संपादकीय

लोकगीतों के साथ : वसंत का बहार और विरह का उत्ताप

इंद्रियगोचर संसार ही लोक है, जिसका सबसे स्थायी और नैसर्गिक अंग प्रकृति है, हालाँकि ऐसे लोक भी शास्त्रोक्त रूप से हैं, जो प्रत्यक्ष नहीं दिखते। लोक का स्वाभाविक स्वर लोकगीत प्रकृति की लीलाओं के नैरंतर्य को प्रतिबिंबित करने से कैसे चूक सकता है। ऋतुएँ प्रकृति की घूर्णमान निरंतरता की निशानी हैं और जाहिर है कि वसंत इसके यौवन की शृंगारिक पहचान। वसंत के सुहाने समय में सदाबहार आकर्षक चर-अचर तत्वों के अलावे जिन्हें लोक में अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता, वे भी उत्फुल्ल रहते हैं, यही वसंत की ताकत है। ग्रामीण लोक में सबसे ज्यादा बदनाम और 'बोया पेड़ बबूल का, आम कहाँ से होय' की कहावत में गाली खाने वाला काँटेदार बबूल का सौंदर्य भी वसंत में देखते ही बनता है। इसके पीले-पीले फूलों को राजस्थानी लोकगीतों में सम्मानजनक स्थान प्राप्त है -'बाँवल्या, कुण रे जलगायो थारो पेड़/बाँवल्या, कृष्ण रे सपूती थाने सींचियो;' अर्थात् बबूल! तुम्हें किसने लगाया और किस सुपुत्री ने सींचा। इस पर बबूल की गर्वोक्ति है -'गोरी ए सोने सरीसो म्हारो फूल/रूपै सरीसी म्हाँ री पातरी'; अर्थात् सोने जैसे मेरे रंगीले फूल और चाँदी जैसे पत्ते है। खैर, जब बबूल पर वसंत की ऐसी खुमारी छा सकती है, तो फिर बाकी का क्या हाल होगा!

भारत में सभी ऋतुएँ और वह भी प्रायः संतुलित रूप में ही रहती हैं। स्वाभाविक है कि यहाँ के लोकगीतों में वासंतिक बयार की सुगंधि हो। अनेक जगह वसंत का सीधे-सीधे उल्लेख न होकर फाल्गुन और चैत्र मास की आबोहवा का चित्र है। मूलतः यही दो महीने वसंत के हैं, हालाँकि मध्य वैशाख तक इसका प्रभाव रहता है, जबकि शुरूआत माघ महीने में वसंत पंचमी से मानी जाती है। कुछ लोग मकर संक्रांति से आरंभ मानते हैं। मकर संक्रांति से मौसम का बदलना और सूर्य का उत्तरायण होना तो चिन्हित होता ही है। इस प्रकार पूस महीना भी इसके दायरे में आ जाता है। इसलिए मकर संक्रांति से लेकर वैशाखी-बुद्ध पूर्णिमा तक के पर्व-त्योहारों, उत्सवों के लोकगायन में वसंत की प्रत्यक्ष-परोक्ष अनुगूँज मिलती है। बारहमासा गीतों के अंतर्गत पूस से वैशाख तक में वसंत भी उपस्थित है।

वसंत की प्रकृति का सर्वाधिक स्पंदन प्रणयी हृदय को होता है, प्रेमालंबन उपलब्ध होने पर आनंदातिरेक से वह झूमता है, जबकि वियोग के उत्ताप में उसकी तड़प के अनेक रूप सामने आते हैं। वसंत में सर्दी कम होने, मौसम सुहाना होने, नए पत्ते और बौर लगने, फूलों के खिलने के साथ प्रकृति भव्य व दिव्य लगती है। यों तो सावन-भादों में भी हरियाली कम नहीं होती, पर वसंत में सब ओर बिना वर्षा के ही हरियाली छाती है, जहाँ न ज्यादा शुष्कता होती है और न ज्यादा तरी। फाल्गुन में गोपियों के संग श्रीकृष्ण के फाग खेलने के स्मरण के साथ महुए का मद पिया जाता है, चैत्र के चंपा के फूलने पर चित्त की चंचलता वसंत के चपल-चरण सदृश होती है -

फागण महीने फाग खेलै गोपियाँ रो नाह
महूड़े रो मद्द पीयौ, वाह रे साँयी वाह,
चैत्र महीने चंपा मोरी चंचल मोर्‌या साह,
बिन बूठाँ हरिया हुसी वाह रे साँयी वाह।

फाल्गुन मास में वसंत और होली का अल्हड़पन एक दूसरे का अनुपूरक होकर रहता है; मन-मिजाज स्फूर्ति, उल्लास, उमंग से स्वयमेव भरपूर हो जाता है -'फागण का मस्त महीना ए मनै तेरी सूँ' और 'हूक उठै सै मेरे मन म्हं प्यार करण त्यार।' इसी तरह हरियाणवीं में प्रचलित है -'काच्ची अम्बली गदराई सामणं म्हं/बूढ़ी री लुगाई मस्ताई फागण म्हं।' होलीमय फाल्गुन के कारण होली और होलीगीतों को 'फगुआ' व 'फाग' भी कहते हैं -

फागन के दिन च्याार रे सजनी, फागण के दिन चार
प्यार का चंदन महकणं लाग्या,
गात का जोबन लचकन लाग्या
मस्ताना मन बहकण लाग्या,
फागण के दिन च्यार रे सजनी, फागण के दिन चार।

सनातनी परंपरा मे जिन सोलह संस्कारों का विधान है, उनके गीतों में भी यत्र-तत्र वसंत की झाँकी मिलती है। वसंत सौंदर्य-शृंगार का उत्प्रेरक ही नहीं, वरन् फूलने-फलने और यौवन के सतत प्रवाह तथा संतति-विकास के लिए भी उपयुक्त समय होता है। एक भोजपुरी लोकगीत में पत्नी ने पति से आम लगाने को कहा ताकि उसे फल मिल सके। इस पर पति कहता है कि यदि तुम बेटा पैदा करो तो सोहर सुनने को मिलेगा -

पियवा, त पियवा से पातर पियवा, सुनहु बचन मोरा हे।
पियवा, एक पेड़ अमवा लगवतऽ त फलवा हम खइती हे,
धनिया, जे तुहुँ बेटवा पझइतऽ त सोहर हम सुनती हे।

आम-जामुन के मँजरित होने, चंपा के खिलने के साथ प्रेमी-प्रेमिकाओं का हृदय विह्वल होता है। दूसरी ओर, जिनके प्रेमी-प्रेमिका किस विध दूर हो गए हैं, उन्हें वियोग की वेदना सालने लगती है। ऐसे में कोई मनचला या मनचली आकर अपने साथ चलने-रहने को कहे तो विरह की ज्वाला बढ़नी लाजिमी है। मैथिली लोकगीत में एक स्त्री विपत्ति बेला में भी अपने पति के आ जाने का और रसिक की सारी संपत्ति में आग लगाने को कहती है -

अमुआ मजरि गेल जमुआ मजरि गेल, मजरल चम्पा कली।
ताहि तर ठाढ़ि छिनरी कओन छिनरी, नयना सँ नीर ढरीं।।
x x x
अगिया लगैबै रसिया घरबा दुअरबा, सुख सम्पति सगरी।
बजर खसेबौ तोर साथ, मोर पिया आबिते रही।।

इसलिए यह अनायास नहीं होता कि ग्रामीण परिजन जवान होती बेटियों को आगाह करते हैं कि अपना यौवन संभाल कर रखना, नहीं तो दुष्ट कामोद्दीप्त लोग घात लगाकर घूम रहे हैं -

पिसना के परिकल मुसरिया तुसरिया, दूधवा के परिकल बिलार।
आपन आपन जोबना संभारिहे ए बिटियवा, रहरी में लागल बा हुँडार।

पूस की लंबी रात होती है। चाहे पूस हो या वसंत-महीना माघ, व्याकुल स्त्री के लिए स्थिति बड़ी विकट है कि वह कैसे बिना पति के यौवन को संभाले, लंबी रात काटे और अपना ढाढ़स बढ़ाए -'पूस लघु दिन राति बड़ि धिक, केहन सुंदर जोग रे।/सुतलि रहितहुँ कंत संग सखि, करम नहिं मोर भोग रे।' यही अभिप्राय भोजपुरी के निम्न बारहमासे से स्पष्ट है -

भादों भवन सोहावन न लागै, आसिन मोहि न सोहाई।
कातिक कंत बिदेस गइले हो, समुझि समुझि पछताई।
अगहन आवन कहि गइले ऊधो, पूस बितल भरि मास।
माघ मास जोबना के मातल, कैसे धरब जिय आस।

राजस्थान की एक लोकश्रुति के मुताबिक भटियाणी रानी का प्रेमी उमरकोट का राणा रतन अपनी तरुणाई में ही दुश्मन को मारते हुए स्वयं भी मारा गया, लेकिन उसकी प्रेयसी को यह खबर नहीं मिल सकी, अतः वह राणा के वियोग में विलाप करती रही कि हे राणा, देखो, कैसी सुंदर वसंत ऋतु आई है; कोकिल, शुक, मयूर बोल रहे हैं, महुबे के फूलने से मद निकल रहा है, आम बौरा गए हैं। ऐसे में एक बार आकर प्रेम-मद को तो पी लो -

अमराणे में महूड़े रो पेड़, हो जी हो रतन राणा!
अमराणे में महूड़े रो पेड़, महूड़ाँ माँही सूँ मद नीसरै,
हो म्हारा रतन राणा!
एकरसूँ अमराणे पाछो आव।

पहाड़ी क्षेत्र का जीवन प्रकृति के अधिक सन्निकट होता है। इसलिए वहाँ हर्ष-विषाद, संयोग-वियोग को ऋतुओं से जोड़कर देखने की परिपाटी कहीं अधिक है। वसंतागमन के लोकगीत कुमायूँ-गढ़वाल में 'वसंती', 'रितुरैण', 'खुदेड़', 'झुमैलो' तथा 'चैती' कहलाते हैं। वसंत का स्वागत, अभिनंदन महीने भर तक उत्सव के तौर पर होता है। बुराँस, फ्यूली, मासी, रायमासी, सिरताल आदि के खिले फूल शृंगार, सौंदर्य, यौवन, प्रेम, मानवत्व ही नहीं, देवत्व तक का एहसास देते हैं -'देवता सरीखो यो फूल के को?/टोपी मा धर लेणो यो के को।' इसलिए फूलों को सिर पर, टोपी पर, पगड़ी पर धारण करने की रीत है। फूल, पौधे, जीव-जंतु आदि के रूप में मनुष्य का पुनर्जन्म होने तथा उसकी निरंतरता कायम रहने का भाव लोकगीतों में है। कई बार ये मानवीय कामनाओं के अतृप्त अवसान की व्यथा-कथा कहते हैं -'फूलदेई, फूलदेई, तुमार झकार भर जै।/हमार टुपर भरी जै! फूलदेई, फूलदेई।'

जब यौवन और सौंदर्य को आलंबन का आधार मिलता है, तब वसंत का आनंद देखते ही बनता है, किंतु प्रेमी के दूर-परदेस होने की स्थिति में वासंतिक बयार से अंतर्ज्वार ही चढ़ता है। एक कुमायूँनी लोकगीत में स्त्री कहती है -'धाम गोयो धार मा, व्याखुली का तार मा/कैकि परांणि कई काटि, कैकि परांणि नाचि हो।' दुखी मन फाल्गुन जैसे मस्त महीने का स्वागत करने में असमर्थ है -

जब पिया गए परदेस गए, तो मस्ताना फागण क्यूँ आया,
जब फूल मेरे मन का सूक्यां, लजमारा फागण क्यूँ आया।

यही नहीं, 'जब सारा फागण बीत गया तैं घर में साजन क्यूँ आया' का भाव प्रकट होता है। फाल्गुनी वसंत के दिन तो गिने-चुने होते हैं; दिन अच्छे हों तो बीतते देर नहीं लगती, समय बुरा हो तो काटे नहीं कटता -'दिन चारे सखी रे अपने बलम को/हम सो माँगन दो फागुन के दिन!' जहाँ प्रेमी-प्रेयसी काफी नजदीक रहकर भी किसी खुन्नस, अनमन या अनमेल के कारण प्रेम-क्रीड़ा में आबद्ध नहीं हो पाते, वहाँ फागुन में यौवन के यों ही रीते बीत जाने की खींझ माता-पिता के अभिभावकत्व पर उतरती है -

बिन मिलती जोट सिलाई, मरियो मात-पिता अन्यायी!
देस बिराणा बालम याणा जाणे ना सार हमारी,
ऊँट के गाल में बूट बाँध दिया खारी खारी।
मरियो मात-पिता अन्यायी!

चैत्र के वसंती माह में स्त्रियाँ सिर पर कलसा रखकर सरोवर तट पर जाते गीत गाती हैं -'दल बादल बीच चमकै जी तारा/साँझ समै पिव, लागो जी प्यारा/काँई रे जबाब करूँ, रसिया।' उत्तराखंड में चैत्र को नाच का महीना कहते हैं। चैत्र मास की शुक्ल तृतीया को गणगौर यानी गौरी पूजन किया जाता है। मेले लगते हैं व गणगौर की सवारी निकलती है, तब गाया जाता है -'खेलन दो गिणगौर भंवर म्हानै पूजन दो गिणगौर।' पूरे चैत्र महीने में चैता-चैती गाने की परंपरा है। चैता में संयोग-वियोग शृंगार की कहानी रागों में कही जाती है। वियोग का संताप मैथिली चैता में देखिए -

आयल चैत उतपतिया हे रामा,
नई भेजे पतिया; हो चैत मासे।
बिरही कोयलिया शब्द सुनावै,
कल न पड़य अब रतिया हे रामा; हो चैत मासे।

बेली चमेली फुले बगिया में
जोबना झूलल मोर अंगिया हो रामा; हो चैत मासे।

इसी प्रकार भोजपुरी चैता में ननद से व्यंग्यात्मक लहजे में पूछा जाता है –

आहो रामा हम तोसे पुछेली ननदी सुलोचनी हो रामा! हो चैत मासे।
तोहरे पिठिया, धूरिया कइसे लागल हो रामा! तोहरे पिठिया...; हो चैत मासे।
आहो रामा बाबा के दुअरवा नाचेला नेटुअवा हो रामा! हो चैत मासे।
भितिया सटल धूरि लागल हो रामा! भितिया सटल...; हो चैत मासे।

प्रत्येक मास के साथ उपदेश विशेष की संगति मिलाते हुए एक गढ़वाली लोकगीत में कहा गया है कि चैत चित्त की चोरी का महीना है, इसलिए कुछ और चोरी नहीं करनी चाहिए। बैशाख में नशे का धुआँ नहीं पीना चाहिए। पूस में मालिश करना चाहिए। माघ में पतिविहीन नारी इधर-उधर घूमती है। फाल्गुन आने पर काम ज्यादा करना चाहिए, बातें कम –

देख चैत चोर छ, चोरी न करो,
चोरी की चीज ना छुय्यां!
प्यारो मैनो बैसाग को, न पे तमाखू धुवां,
कालो कस कलेजा बैठलो, खाँसी पड़ली भुवां!
प्यारो जु पूष घूसी मारला, घूसी घासी न करैय्या!
जब माघू बे माघू रांड लाँगो, धारी-धारी जैय्या!
देखी वैणी फागुणी धान कमौणी नी लाणी छुय्याँ!

इसलिए वसंत एक चरण है अगले सोपान की ओर जाने का, ठीक वैसे ही जैसे कली फूल व फल की पूर्वावस्था है, न कि पूर्णावस्था। मैथिली लोकगीत का संदेश है कि कच्ची कली को कचनार होने देना चाहिए –

बनमा में फुलए बहेलिया, वने फुल सोभित हे।
आहे, मालिन हाथ पसार, हम फुल लोढ़ब हे।।
धीरे रहु हे मालिन धीरे रहु, अबे फुल कोढ़िल हे।
आहे, जब फुल हेत कचनार, तबे अहाँ लोढ़ब हे।।

निष्कर्षतः लोकगीतों के वासंतिक उछाह में प्रकृति और मानव में एकात्म के साथ एक दूसरे की अंतर्भावना को अंगीकार करने की प्रक्रिया लगातार दिखती है। इसमें खुलापन तो है, पर छिछोरापन नहीं है; शृंगारिक प्रसाधनों से दूरी है, पर अनगढ़ सौंदर्य भरपूर है; शिष्टता का अभाव है, पर अश्लीलता नहीं है; इसलिए यहाँ निसर्ग ज्यादा नैसर्गिक है, प्रकृति ज्यादा प्राकृतिक है; वसंत ज्यादा वासंतिक यानी ओरिजनल है। इसी शाश्वत ओरिजनलिटी के कारण वह जाते-जाते पतझड़ की अनिवार्यता और ग्रीष्म की अपरिहार्यता बता जाता है कि बिना पतझड़ के वसंत का आना संभव नहीं और वासंतिक फूल-फलों, बीज-सूत्रों को पकने, प्रौढ़-परिपक्व होने के लिए ग्रीष्म की तपन भी जरूरी है; वहीं सूखे-मुरझाए को आश्वस्त कर जाता है कि 'अइहेऽ बहुरि बसंत रितु इन डारिन के फूल।' इसी विश्वास से अपनी दुनिया चलती है।